International Indexed & Refferred Research Journal, ISSN-2250-2599; Vol. I* ISSUE -1 Oct., 2012

शोध पत्र

समत्व, देवत्व एवं शद्धत्व : शिक्षा के संदर्भ मं

* डॉ. पूनम नागरु

अपने अंदर दिव्यत्व का बोध करना और तदनुसार आचरण करना ही संस्कृति है। संस्कृति के बिना जीवन रोशनी के बगैर घर की तरह है। संस्कृति का सम्बंध चरित्रा और आचरण से है। समुचित शिक्षा द्वारा तथा जीवन के तौर–तरीकों में सांस्कृतिक सुधार द्वारा मनुष्य जीवन को सुखमय बनाया जा सकता है। आज संस्कृति के अवमूल्यन का दुष्प्रभाव–शिक्षण संस्थाओ पर भी पड़ रहा है। शिक्षण संस्थाओं में चरित्रा के उच्च आदर्शों की ओर अब ध्यान कम दिया जा रहा है।

यही कारण है कि अब इन संस्थाओं में अशांति, असुरक्षा एवं अव्यवस्था व्याप्त होती जा रही है। जिसका प्रभाव समग्र राष्ट्र की सम्पूर्ण व्यवस्था पर पड़ रहा है।

शिक्षा का ध्येय धन कमाना होता जा रहा है, जिससे नैतिक मुल्यों में गिरावट आती जा रही है। क्योंकि शिक्षा केवल शब्द–ज्ञान ही नही है, अपितु ऐसा माध्यम है जो व्यक्ति को विवेक के साथ आध्यात्मिक जीवन व्यतीत करने की प्रेरणा देती है। जिस प्रकार विवेक के बिना ज्ञान, दृढ़ इच्छा के बिना विचार, माधुर्य के बिना संगीत, विनम्रता के बिना पांड़ित्य, अनुशासन के बिना समाज, आभार के बिना मित्राता, सत्य के बिना वाणी सभी एकदम बेकार है, उसी प्रकार बिना संस्कारों के शिक्षा बेकार है। आज सर्वत्रा अशांति दिखाई दे रही है।

ईर्ष्या–द्वेष, छल–कपट, लूट–पाट का वातावरण है। शिक्षार्थी आज अच्छे संस्कारों और उचित शिक्षा के अभाव में दिग्भ्रमित हो रहा है, वे सभी घर–परिवार और समाज के लिए बोझ बने घूम रहे हैं। श्रम एवं निष्ठा का उनमें पूर्णतयः अभाव है। आज की यंत्रीकृत–सभ्यता में विद्वानों में विवेक की कमी है, तो शिक्षित व्यक्ति में विनम्रता का अभाव है। इस यंत्रीकृत सभ्यता में विद्यार्थी यंत्रा बनता जा रहा है और शरीर को सुख पहुॅंचाने, जीवन को धन से समृद्व करने में लगा रहता है। उसका हृदय–पक्ष दबता जा रहा है। इच्छॉए बढ़ती जा रही हैं।

मन अनियंत्रित होता जा रहा है। जीवन की वास्तविकता और स्वयं के मूल तत्वों की ओर नजर नहीं जा रही है। इस अति भौतिकवादी वातावरण में अब और आवश्यक हो गया है कि वह समझे कि भौतिक संसार की वास्तविकता क्या है, और उसका चरमप्रयोजन क्या है। अध्यात्म विद्या द्वारा एवं ऐजूकेयर द्वारा संस्कृति को अवमूल्यन से रोकना संभव है। क्योंकि अपने जन्मजात गुणों को उभारने की प्रक्रिया ही ऐजूकेयर है।

संसार की कार्यप्रणाली दिनोंदिन विचित्रा होती जा रही है। जीवन के हर क्षेत्रा में शारीरिक, धार्मिक, लौकिक, भौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्रा में भी प्रदूषण फैल गया है। मानवता पवित्रातम है। मानवता से बढ़कर कोई बड़ी शक्ति नही है। व्यक्ति को शिक्षा और ऐजूकेयर दोनो को ग्रहण करके मानवता को विकसित करना होगा। दूसरो के द्वारा लिखि गई पुस्तकें पढ़कर जो ज्ञान अर्जित किया जाता है उसे शिक्षा कहते हैं, परंतु ऐजूकेयर ऐसा नही है। वह तो हृदय से आता है। वह व्यक्ति के भीतर छिपी अप्रत्यक्ष शक्ति है, जिसे साधना के द्वारा प्रत्यक्ष करना है। हमें सत्य धर्म, शांति, प्रेम और अहिंसा को प्रत्यक्ष करना है। ये पांचों मूल्य एक–दूसरे से भिन्न नहीं है अपितु ये तो एक–दूसरे में से निकलते है। मानव के लिए ये पांचों मूल्य ईश्वर प्रदत्त अनुपम भेंट है। व्यक्ति को चाहिए कि इन गुणों की दिखाई देने वाले लक्षण बनाए और उनको अपने जीवन में उतारें, वही ऐजूकेयर है।

'क्षमा तो मानव का भूषण है, क्षमा है मानव का शृंगार।
क्षमायुक्त मानव इस जग में, पूजा पाता है निराकार।'

क्षमाशील व्यक्ति विनम्र होता है। उसमें एक विशेष प्रकार की लचक होती है। वह कभी टूटता नही। क्षमा से मैत्रीभाव में वृद्वि होती है। क्षमा गंगा का रूप है तो क्रोध अग्नि का रूप है। जिस खेत को गंगा का जल मिलता रहे वह खेत सदैवी गिला व मुलायम ही नही अपितु हरा भरा भी बना रहता है और जिस खेत में आग ही जलती रहे, वह खेत बंजर हो जायेगा। अगर मनुष्य क्षमापूर्ण होगा तो उसके जीवन की खेती सदैव हरी–भरी रहेगी क्योंकि त्राुटि करना मनुष्य का कार्य है और क्षमा करना देवत्व है।

भारतीय संस्कृति की आत्मा अध्यात्म में बसती है। यहां तो चींटी से लेकर हाथी तक, छोटे से पौधे से लेकर विशाल वट वृक्ष तक और मिट्टी से लेकर पहाड़ तक में ईश्वर का रुप देखा जाता है और उसकी पूजा होती है। फिर व्यक्ति इतना असहिष्णु क्यों होता जा रहा है। इसका एक महत्वपूर्ण कारण अपनी संस्कृति से विमुख होना है। हम भोगवादी प्रवृति को अपनाने जा रहे है। परोपकार और त्याग की भावना गोण होती जा रही है।

जिसके कारण हताशा और निराशा बढ़ रही है। सच्चा सुख और शांति तो जियो और जीने दो से मिलेगी। अनेकता में एकता के दर्शन करना ही सच्ची अध्यात्मिकता है। आज का विद्यार्थी जो अनेक प्रकार की शिक्षा ग्रहण कर रहा है। उसमें मानवता का ज्ञान बहुत कम है। वे एकता में तो अलगाव और विविधता देखते हैं परंतु विविधता में एकता नही देख पाते है।

एकता में अलगाव देखना अति सरल है, कोई भी ऐसा कर सकता है। परंतु पूरे विश्व में फैली हुई अनेकता के पीछे मूल रुप में एकता को पहचानने के लिए बहुत प्रयास करना पड़ता है। सबके अंदर के दिव्य तत्व को पहचानो। इस संसार में सभी मनुष्यों को एक ही समझो और समस्त मानव जाति की एकता के सूत्रा को पहचान लो।

"धर्म होवे अनेक, किन्तु रब सबका एक
वस्त्र होवे अनेक, किन्तु धागा सबका एक
गहने होवे अनेक, किन्तु स्वर्ण सबका एक "

ईश्वर द्वारा रची गई सृष्टि में एकता है, परंतु व्यक्ति उसमें कई विभाजन कर देता है। आज आवश्यकता इस बात की है कि सम्पूर्ण मानव जाति में एकता हो। जब हम एकता को विकसित करते हैं तब हमारे हृदय में निर्मलता आती है, जहॉ पवित्राता होती हैं वहॉ दिव्यता होती है। एकता, शुद्वता और दिव्यता एक दूसरे से परस्पर जूड़े हुए हैं। और एक दूसरे पर आधारित भी है। लेकिन आज का मानव एकता से दूर भागता जा रहा है। आखिर कब तक हम प्रदेशों, क्षेत्रों, जातियों, धर्मों और भाषा–भाषियों में बॅटे रहेंगें। आखिर कब तक शुभ समय आएगा जब हम जागेगें और समझ पाएंगे कि राम–रहीम, जात–पात, आरोप–प्रत्यारोप करते रहना न तो देशहित में है और न स्वहित में।

नयी पीढ़ी रिश्तों की मान, मर्यादा एवं महत्व को नही समझ सकती। उन्हें ज्ञात होना चाहिये कि इनसे हम अपनी जड़ो के साथ जुड़ते है। जड़े हमे जीवन की ऊर्जा देती है। अपने माता–पिता, अपने बच्चे हमे स्वयं अपने से जोड़ते है।

यदि हम इनकी उपेक्षा करेगें तो सारी सामाजिक व्यवस्था चरमरा उठेगी। फिर व्यक्ति कहॉ रहेगा ? उसका अस्तित्व तो समाज के साथ जुड़ा हुआ है। फ्रैंच विचारक रुसो का कथन है कि–''इंसान पैदा तो स्वतंत्रा होता है परंतु जीवन काल में अनेक बंधनों में बंधा चला जाता है। ये बंधन ही उसे जीने का प्रयोजन देते हैं। निष्प्रयोजन जीना भी कोई जीना है ? अपने तक सीमित व्यक्ति कैसे संस्कृति का हिस्सा बनेगा ? कवि जयशंकर प्रसाद की पंक्तियॉ है–

" अपने में सब कुछ भर कैसे व्यक्ति विकास करेगा ?
यह एकांत स्वार्थ भीषण है, अपना नाश करेगा।"

वर्तमान समय की प्राथमिकताएं बदल गई हैं, उनका स्वरुप भी बदल गया है जिस कारण संस्कृति का अवमूल्यन हो रहा है अब सबको बिना कुछ श्रम किये ढ़ेरों रुपया चाहिए। एक स्वच्छंद भोगमय जीवन चाहिए। अर्थोपार्जन की अदम्य लालसा मनुष्य को अवसाद और निराशा के अंधेरे में धकेल देती है। उधर मात्रा दैहिक सुख के लिए स्थापित किए गए सम्बंध अकारण भी टूट सकते हैं और जिंदगी ऐसी दुभर हो जाती है कि दिल पुकार उठता है–

"मरते हैं आरज़ू में मरने की,
मौत आती है पर नहीं आती।"

यह मर–मर के जीना जिंदगी को और भी बोझिल बना देता है। हत्याओं–आत्महत्याओं का सिलसिला इसी बोझ को न सहने का परिणाम हैं। सांत्वना देने के लिए समाज अथवा परिवार हो तो इस सिलसिले को टाला जा सकता है। 'कामायनी' को ही पुनः उद्वृत करते हैं–***" सब भेदभाव भुलवाकर दुख–सुख को दृश्य बनाता मानव कह रे 'यह मैं हूँ', यह विश्व नीड़ बन जाता।"***

यह समन्वय मानव–मानव के टकराव से नहीं अपितु मेल–मिलाप से आयेगा।

**** असिटैंट प्रोफेसर, राव लाल सिंह महाविद्यालय, सिधरावली, गुड़गॉव (हरियाणा)***

संदर्भ ग्रंथ

1. दीक्षित पल्लवी एवं हरितिमा, श्री सत्य साई बाबा का मूल्यपरक शिक्षा चिन्तन, शोभ के विभिन्न संदर्भ, उत्तर प्रदेश, पृष्ठ 272
2. सक्सैना, रवि (अगस्त 2012) भारतीयतता का भाव सबसे उपर, नेशनल दुनिया, नई दिल्ली 14–08–2012
3. सनातन सारथी वर्ष 36 अंक 5 मई 2007, नई दिल्ली।
4. सनातन सारथी वर्ष 37 अंक 3 मार्च 2008, नई दिल्ली।